तारन-त्रिवेणी

मूल-लेखक

परम पूज्य आचार्य

श्रीमद्तारणतरण स्वामी जी महाराज

प्रस्तावना-लेखक

डॉ० हीरालाल जी जैन एम. ए., एल एल. बी.

प्रोफेसर,

किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती

पद्यानुवादक

रत्नकरंडश्रावकाचार व भक्तामर के पद्यानुवादक,

श्री अमृतलाल "चंचल"

श्री जुगलकिशोर जी

मुख्तार

देहली.

निवेदन

तारणसमाजभूषण धर्मदिवाकर पूज्य श्री ब्रह्मचारी गुलाबचन्द्र जी महाराज ने मंत्री पद के समय अपने पिता धर्मरत्न स्वर्गीय लालदास जी की व अपनी स्वर्गीया विदुषी मातेश्वरी जी की पुण्य स्मृति में इस ग्रंथ की १००० प्रतियां सन् ४० में धर्मप्रेमी जनों को भेंट-स्वरूप वितरण की थीं। जिनका उपयोग अच्छा हुआ जानकर ग्रन्थमाला ने पुनः यह द्वितीय संस्करण जिसमें से २६०० प्रतियां मुद्रित कराई गई हैं। जिनमें से ६०० प्रतियां श्रीमान् मन्नूलाल कन्छेदीलाल जी डेरिया बावई व २०० प्रतियां श्रीमान् सेठ बसंतलाल मुरलीधर जी बांदा वालों की ओर से तारण समाज के प्रत्येक श्री चैत्यालयों में व स्वाध्याय प्रेमी जनों को भेंट स्वरूप भेजने की व्यवस्था की जायगी। शेष १८०० प्रतियां ग्रन्थमाला के स्टॉक में रहेंगी।

अतः और भी जो सज्जन जितनी प्रतियां अपनी ओर से वितरण कराना चाहें वे ५०) प्रति सैकड़ा से मंगाकर या संस्था के ही द्वारा वितरण करने की आज्ञा प्रदान करें। अथवा जो स्वाध्याय प्रेमी सज्जन स्वयं के स्वाध्याय के साथ ही साथ अपने इष्ट मित्रों को इसका स्वाध्याय कराना चाहें वे ५) का मनियार्डर भेजकर १० प्रतियां पोस्ट पार्सल द्वारा मंगालें। जिसका पोस्टेज खर्च फ्री रहेगा।

जिन सज्जनों ने वितरण कराई हैं व करावेंगे, वे सभी साहित्य प्रेमी सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रुतपंचमी, १६ जून १९५३
तारण सं० ५०५

मंत्री–ता० त० ग्रंथमाला
श्री निःश्रेयी जी क्षेत्र।
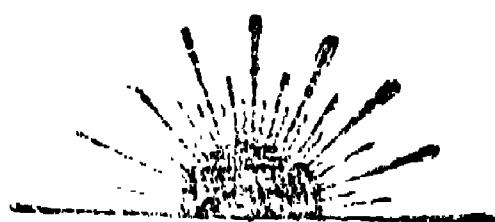
तारन-त्रिवेणी पर दो शब्द

यदि साहित्यक प्रलय का समय आजावे और मुझ से कहा जाय कि तुम भारतीय साहित्य में से केवल उस साहित्य को बचा सकते हो जो तुम उसमें सर्वोत्कृष्ट और सदा नूतन रहने वाला समझते हो तो मैं बिना किसी संकोच के उस साहित्य की रक्षा करने का प्रयत्न करूंगा जो अध्यात्म से संबधी रखता है, जिसमें शाश्वत तत्वों की खोज की गई है, जहां मनुष्य की दृष्टि बहिर्जगत के अन्तस्तल और अन्तर्जगत के विकास पर डाली गई है तथा जहां सुख और शान्ति का साधन पराधीन न रखकर स्वाधीन दिखलाया गया है। प्राचीनतम साहित्य में वैदिककाल के उपनिषद् ग्रंथ इसी कोटि के हैं और विदेह राजर्षि जनक उन्हीं कर्मयोगी महात्माओं में से एक बतलाये हैं। मध्य-कालीन अनेक सन्त महात्मा ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपनी बानी में आधिभौतिक जगत का आन्तरिक दर्शन कराने तथा सच्चा सुख बतलाने का प्रयत्न किया है। उत्तर भारत के कबीर, नानक, दादू, पलटू आदि तथा महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम, मोरोपंत आदि संतों ने अपने अपने समय में, अपने अपने प्रदेश की जनता का ध्यान थोथे क्रियाकांड और अधविश्वास से हटाकर सच्ची शुद्ध भावना और हृदय की पवित्रता की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। बौद्धों के

भीतर भी महात्मा बुद्ध के पश्चात् काण्होपद, सरह, डोम्बी, गुण्डारी आदि अनेक ऐसे संत हुए हैं जिनका सम्प्रदाय विश्वव्यापक कहा जा सकता है।

जैन धर्म में अध्यात्म की महिमा विशेष है। आत्मा के संबंध में जितना चिन्तन और अनुसंधान यहां किया गया है उतना किसी भी अन्य धर्म के भीतर किया गया नहीं पाया जाता। जैन धर्म मूलतः भावनाप्रधान है। सुख दुःख, पुण्य पाप, अच्छाई बुराई का संबंध यहां बाह्य अवस्था से नहीं किन्तु अन्तवृंत्ति के आधीन बतलाया गया है। इस धर्म में आध्यात्मिक योगियों की संख्या बहुत अधिक है, जिनमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम सबसे प्रथम याद आता है। उनके अनेक ग्रंथों में आत्मा से परमात्मा बनने का मार्ग दर्शाया गया है। उनकी परम्परा योगिचन्द्र व रामसिंह जैसे मुनियों ने अत्यन्त निर्भीकता से कायम रखी है, जिनके परमात्मप्रकाश व पाहुडदोहा नामक ग्रंथ जैन साहित्य की अनुपम निधि हैं। उनका उपदेश है कि सुख के लिये बाहर पदार्थों पर अवलम्बित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे केवल दुख और सन्ताप ही बढ़ेगा। सच्चा सुख इंद्रियों पर विजय और आत्मध्यान से ही मिलता है। यह सुख इंद्रियसुखाभासों के समान क्षणभंगुर नहीं है, किन्तु चिरस्थायी और कल्याणकारी है। आत्मा की शुद्धि

के लिये न तीर्थजल की आवश्यकता है, न नाना प्रकार वेष धारण करने की। आवश्यकता है केवल राग और द्वेष की प्रवृत्तियों को रोककर आत्मानुभव की। मूंड मुंडाने से, केशलौंच करने से या नग्न होने से ही कोई सच्चा योगी और मुनि नहीं कहा जा सकता। योगी तो तभी होगा जब समस्त अंतरंग परिग्रह छूट जावें और मन आत्मध्यान में लवलीन हो जावे। देवदर्शन के लिये पाषाण के बड़े बड़े मन्दिर बनवाने तथा तीर्थों तीर्थ भटकने की अपेक्षा अपने ही शरीर के भीतर निवास करने वाले देव का दर्शन करना अधिक सुखप्रद और कल्याणकारी है। आत्म ज्ञान से हीन क्रियाकांड कण रहित तुष और पयाल कूटने के समान निष्फल है। ऐसे व्यक्ति को न इन्द्रिय सुख ही मिलता है और न मोक्ष का मार्ग ही।

इसी प्रकार के एक बड़े महात्मा सोलहवीं शताब्दि में बुन्देलखंड में हुए हैं, जिनका नाम है तरनतारन स्वामी। आत्ममनन और तद्विषयक ग्रंथ रचना के अतिरिक्त इनका प्रभाव इससे भी जाना जाता है कि उनकी विचार-धारा को मानने वाला एक सम्प्रदाय जैन समाज के भीतर आज तक भी कायम है जो 'तारनपंथी' समाज के नाम से प्रसिद्ध है। यह समाज मूर्ति पूजा को नहीं मानता, वह 'समय' अर्थात् सिद्धान्त व तत्त्वज्ञान की पूजा करता है।

किन्तु दुर्भाग्यतः बहुत समय तक तरनतारन स्वामी के रचे हुए ग्रंथों की प्रसिद्ध नहीं हुई, न उनका संशोधन व प्रकाशन हुआ। प्रत्युत, उक्त समाज में उनके ग्रंथों को गुप्त रखने की प्रवृत्ति सी हो गई थी। पर कोई भी समाज, चाहे वह कितना ही कट्टर क्यों न हो, समय की मांग और उसके प्रभाव स बच नहीं सकता। समय एक ऐसा व्यक्ति खड़ा कर देता है जो उस कट्टरता के दुर्ग को जीतकर ज्ञान-स्वातंत्र्य की धारा बहा देता है। गत आठ दश वर्षों से जैन-धर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी का ध्यान तरनतारन साहित्य की ओर गया है, जिसके फलस्वरूप उक्त समाज के उन्नतिशील सज्जनों के सहयोग द्वारा वे उस साहित्य की अनेक निधियों को प्रकाश में लाने में सफल हुए हैं। ब्रह्मचारी जी न अबतक कोई पांच सात ग्रथ इस साहित्य के मूल, भावानुवाद व विशेषार्थ सहित सम्पादित करके प्रकाशित कराये हैं। इन ग्रथों की भावभंगी बहुत कुछ अटपटी है। जैन धर्म के मूलसिद्धान्त और आध्यात्मवाद के प्रधान तत्त्व तो इसमें स्पष्ट झलकते हैं, पर कर्ता की रचनाशैली किसी एक सांचे में ढली और एक धारा में सीमित नहीं है। यह स्पष्ट है कि कवि किसी सीमा को बांधकर अपने विचार व्यक्त नहीं कर रहे हैं, किन्तु विचारों का उद्रेक जिस ओर, जिस प्रकार जब चला गया, तब तैसा उन्हें ग्रंथित करके रख दिया। और इस कार्य में

उन्होंने जिस भाषा का अवलम्बन लिया है वह तो बिलकुल उनकी निजी चीज है। वह भाषा के समस्त देश-प्रदेश-भेदों व काल-भेदों के परे है। न वह संस्कृत है, न कोई प्राकृत-अपभ्रंश है और न कोई प्रचलित देशी भाषा। मेरी समझ में उसे 'तरनतारन भाषा' ही कहना ठीक होगा, जिसका परिचय उन ग्रंथों के अवलोकन से ही पाया जा सकता है।

इस साहित्य के तीन छोटे छोटे ग्रंथ हैं—पंडित पूजा, मालारोहण और कमल बत्तीसी। इनमें शुद्ध भावना, शुद्धाचरण और विशुद्ध ज्ञान पर जोर दिया गया है। पर जो गहन और मनोहर भाव उनमें भरे हैं उनका उक्त अटपटी शैली के कारण जन साधारण द्वारा पूरा लाभ उठाया जाना कठिन है। उनके ऐसे रूपान्तर की जरूरत थी जो सरल, सुस्पष्ट और हृदयग्राही हो। ऐसा रूपान्तर मुझे प्रिय अमृतलाल "चंचल" के पद्यानुवाद में देखने को मिला। चंचल की कविता मूल के भाव की रक्षा करती हुई अत्यन्त सुन्दर और लोकरुचि के अनुकूल है। मुझे आशा और विश्वास है कि इस कविता द्वारा तरनतारन स्वामी के उपदेशों का अच्छा प्रचार होगा। यह 'तारन-त्रिवेणी' जनता का खूब कल्याण करेगी।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
२०—२—४०

—हीरालाल जैन

अपनी बात

'तारन-त्रिवेणी' सोलहवीं शताब्दी में हुए, एक पहुँचे हुए जैन संत की तीन महान कृतियों का (पंडितपूजा, मालारोहण, कमल बत्तीसी) एक परिवर्तित सामूहिक नाम है। इन ग्रंथों में जहां कहीं भी कवि की दृष्टि दौड़ी है, वहीं उन्हें आध्यात्मिकता का दीदार हुआ है। आत्मा ही देव है, आत्मा ही शास्त्र है, आत्मा ही गुरु है, आत्मा ही तीर्थ है और आत्मा ही धर्म है। कवियित्री मीरा के समान, इन ग्रंथों में, यदि कोई भावुक देखे तो वे एक तरह से गाते-से दिखाई पड़ते हैं—

"मेरो तो आतम दयाल दूसरो न कोई रे।
जाके सिर ज्ञान-मुकुट मेरो नाथ सोई रे।..."

साम्प्रदायिकता या दीगर भेद भाव से आपकी कृतियाँ एक तरह से सर्वथा अछूती हैं और अगर गुरुदेव के अनुयायीगण आज तक उनके महान ग्रंथों को आलमारियों में कैद न रख, विद्वानों को इस बात का अवसर देते कि वे देखते कि उन ग्रंथों में परम पूज्य स्वामी जी संसार के नाम क्या वसीयत कर गये हैं और उन्होंने किस ऐसे सर्वप्रिय और चुम्बक से आकर्षक मार्ग को अख्तियार किया था कि जिससे न कुछ समय में ही जाति पाँति के भेद भाव को छोड़कर उनके लगभग ५,५३००० शिष्य होगये थे, तो आज संसार का कल्याण हो जाता और स्वामी जी का नाम संसार के बच्चों बच्चों की जुबान पर होता!

—अमृतलाल "चंचल"

समर्पण

तारणस्वामी व जिनवाणी के अनन्य भक्त

धर्मरत्न,

स्वर्गीय श्रीमान् पं० लालदास जी

के दूर पहुँचे हुए

कर-कमलों में

卐

तारणतरण आचार्यजी के
आप भक्त महान् थे।
प्रति पल अधर से आपके
उनके निकलते गान थे।
उनके प्रसूनों पर न फिर
क्यों आपका अधिकार हो?
'तारन-त्रिवेणी' आपकी है,
आपको स्वीकार हो!

—चंचल—

प्रथम धारा

||||

आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्गुरु भाई !
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही,
तीर्थ आत्म ही सुखदाई ।
आत्म-मनन ही है रत्नत्रय-
पूरित अवगाहन सुखधाम ।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
धर्म, तीर्थ को सतत प्रणाम ।

★

पंडित पूजा

ओंकारस्य ऊर्ध्वस्य,
ऊर्ध्व सद्भाव शाश्वतं ।
चिद् स्थानेन तिष्ठते,
ज्ञानेन शाश्वतं ध्रुवं ।

[एक]

ओम् रहा है और रहेगा,
सतत उच्च सद्भावागार ।
परमब्रह्म, आनन्द ओम् है,
ओम् अमूर्त, शून्य—आकार ।
ओम् पंच परमेष्ठी मंदिर,
ओम् ऊर्ध्व गति का धारी ।
केवल-ज्ञान-निकुंज ओम् है,
ओम् अमर, ध्रुव, अविकारी ।

निश्चय नय जानंते,
शुद्ध तत्व विधीयते।
ममात्मा गुणं शुद्धं,
नमस्कारं शाश्वतं ध्रुवं।

[दो]

जिन्हें वस्तु के सत्, चित् ज्ञायक,
या निश्चय नय का है ज्ञान।
वही अनुभवी, पारखि करते,
निज स्वरूप की सत् पहिचान।
अन्तस्तल–आसीन आत्मा,
ही है अपना देव ललाम।
आत्म द्रव्य का अनुभव करना,
ही है सच्चा, अचल प्रणाम।

ॐ नमः विंदते योगी,
सिद्धं भवत् शाश्वतं।
पंडितो सोपि जानंते,
देवपूजा विधीयते।

[तीन]

योगीजन नित ओम् नमः का,
शुद्ध ध्यान ही धरते हैं।
'सोऽहँ' पद पर चढ़कर ही वे,
प्राप्त सिद्ध-पद करते हैं।
'ओम् नमः' जपते जपते जो,
निज स्वरूप में रम जाता।
वही देव पूजा करता है,
पंडित वह ही कहलाता।

ह्रींकारं ज्ञान उत्पन्नं,
ओंकारं च वंदते ।
अर्हं सर्वज्ञ उक्तं च,
अचक्षु दर्शन दृष्टते ।

[चार]

जगत पूज्य अरहन्त जिनेश्वर,
जिसका देते नव उपदेश ।
साम्य दृष्टि सर्वज्ञ सुनाते,
जिसका घर घर में सन्देश ।
जो अचक्षु-दर्शन-चख गोचर,
जो चित चमत्कार सम्पन्न ।
ओंकार की शुद्ध वंदना,
करती वही ज्ञान उत्पन्न ।

मति श्रुतश्च संपूर्णं,
ज्ञानं पंचमयं ध्रुवं।
पंडितो सोपि जानंते,
ज्ञानं शास्त्र स पूजते।

[पांच]

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय से,
ज्ञान करें जिसमें कल्लोल।
पंच ज्ञान केवल भी जिसमें,
छोड़ रहा नित ज्योति अलोल।
ऐसे आत्म-शास्त्र को ही नित,
जो पूजे विवेक-शिरमौर।
वही सत्य पंडित प्रज्ञाधर,
वही ज्ञान-धन का है ठौर।

ॐ ह्रीं श्रियंकारं,
दर्शनं च ज्ञानं ध्रुवं ।
देवं गुरुं श्रुतं चरणं,
धर्मं सद्भावशाश्वतं ।

[छह]

ह्रीं श्रीं के रूप मनोहर,
करते जिसमें विमल प्रकाश ।
अमर ज्ञान, दर्शन का है जो,
एक मात्रतम दिव्य निवास।
वही परम उत्कृष्ट ओम् ही,
है त्रिभुवन मंडल में सार ।
वही देव, गुरु, शास्त्र आचरण,
वही धर्म सद्भावागार ।

वीर्यं अँकूरण शुद्धं,
त्रैलोक्यं लोकितं ध्रुवं।
रत्नत्रयं मयं शुद्धं,
पंडितो गुण पूजते।

[सात]

केवलज्ञान-मुकुर में जिसको,
तीनों लोक दिखाते हैं।
जिसके स्वाभाविक बल-जल का,
निधि-दल थाह न पाते हैं।
रत्नत्रय की सुरसरिता से,
शुद्ध हुआ जो द्रव्य महान्।
उसी आत्म रूपी सद्गुरु की,
करते हैं पूजन विद्वान।

देवं गुरुं श्रुतं वंदे,
धर्मशुद्धं च विंदुते।
तिअर्थं अर्थलोकं च,
स्नानं च शुद्धं जलं।

[आठ]

आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्गुरु भाई !
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही,
तीर्थ आतम ही सुखदाई।
आतम-मनन ही है रत्नत्रय-
पूरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
धर्म, तीर्थ को सतत प्रणाम।

चेतना लक्षणो धर्मो,
चेतियंत सदा बुधै।
ध्यानस्य जलं शुद्ध',
ज्ञानं स्नान पंडितः।

[नौ]

चिदानन्द, ध्रुव, शुद्ध आत्मा,
की चेतनता है पहिचान।
बुद्धिमान जन नित्य निरन्तर,
धरते हैं उस ही का ध्यान।
नदी, सरोवर में करते हैं,
अवगाहन जड़ अज्ञानी।
आत्म-ज्ञान-जल से प्रक्षालन,
करते सत्पंडित ज्ञानी।

शुद्धतत्वं च वेदंते,
त्रिभुवनम् ज्ञानेश्वरं ।
ज्ञानं मयं जलं शुद्धं,
स्नानं ज्ञानं पंडितः ।

[दश]

हस्तमलकवत् जिसको तीनों,
भुवन, चराचर प्राणी हैं ।
उसी ब्रह्म को ध्याते हैं बस,
जो बुधजन, विज्ञानी हैं ।
शुद्ध आत्म है स्वच्छ सरोवर,
कल कल करता जिसमें ज्ञान ।
इसी ज्ञान रूपी जल में नित,
पंडित जन करते (हैं) स्नान ।

सम्यक्तस्य जलं शुद्धं,
संपूर्णं सर पूरितं।
स्नानं पिवत गणधरनं,
ज्ञानं सरनंतं ध्रुवं।

[ग्यारह]

सम्यग्दर्शन रूपी जिसमें,
भरा हुआ है नीर अगम्य।
ऐसा है वह परम ब्रह्म का,
भव्यो! सरवर अविचल रम्य।
महा मुनीश्वर श्री गणधर जी,
जिनकी शरण अनेकों ज्ञान।
इस सर में ही अवगाहन कर,
करते इसका ही जल पान।

शुद्धात्मा चेतनाभावं,
शुद्ध दृष्टि समं ध्रुवं।
शुद्धभाव स्थिरीभूत्वा,
ज्ञानं स्नान पंडितः।

[बारह]

शुद्ध आत्मा है, हे भव्यो!
सत् चैतन्य भाव का पुंज।
सम्यग्दर्शन से आभूषित,
मोक्ष प्रदाता, ज्ञान-निकुंज।
निश्चल मन से इसी तत्व को,
शुद्ध गुणों का करना ध्यान।
पंडित वृन्दों का बस यह ही,
प्रक्षालन है सत्य महान्।

प्रक्षालितं त्रति मिथ्यात्वं,
शल्यं त्रियं निकंदनं ।
कुज्ञान राग दोषं च,
प्रक्षालितं अशुभभावना ।

[तेरह]

धुल जाते इस ज्ञान-नीर से,
तीनों ही मिथ्यात्व समूल ।
तीनों शल्यों को विनिष्ट कर,
ज्ञान बना देता यह धूल ।
अशुभ भावनाएं भी सारी,
इस जल से धुल जाती हैं ।
राग द्वेष, कुज्ञान-कालिमा,
पास न रहने पाती हैं ।

कषायं चत्रु अनंतानं,
पुण्य पाप प्रक्षालितं।
प्रक्षालितं कर्म दुष्टं च,
ज्ञानं स्नान पंडितः।

[चौदह]

पुण्य, पाप दोनों रिपुओं को,
क्षय कर देता है यह नीर।
मलिन कषायें छिप जाती हैं,
देख रश्मि से इसके तीर।
कर्म-नृपति की सेना को भी,
कर देता यह जल-भट चूर्ण।
ऐसा है यह ज्ञान-उदक का,
अवगाहन मंगल परिपूर्ण।

प्रक्षालितं मनश्चपलं,
अविधि कर्म प्रक्षालिते।
पंडितो वस्त्र संयुक्तं,
आभरनं भूषण क्रियते।

[पन्द्रह]

चंचल मन भी ज्ञान-नीर से,
प्रक्षालित हो जाता है।
द्रव्य, भाव, नोकर्म-यूथ भी,
वहां न फिर दिख पाता है।
सम्यक् विधि से परम ब्रह्म को,
जब उज्वल कर देता नीर।
तब ज्ञानी जन धारण करते,
हैं अपने आभूषण चीर।

वस्त्रं च धर्म सद्भावं,
आभरणं रत्नत्रयं ।
मुद्रका सम मुद्रस्य,
मुकुटं ज्ञानमयं ध्रुवं ।

[सोलह]

शुद्ध आत्म-सद्भाव-धर्म ही,
है पंडित का उज्वल चीर ।
झिलमिल करता रत्नत्रय ही,
है उसका भूषण गंभीर ।
समताभावमयी मुद्रा ही,
है उसकी मुद्रिका अनूप ।
अविनाशी, शिव, सत्यज्ञान ही,
उसका ध्रुव किरीट चिद्रूप ।

दृष्टं शुद्ध दृष्टौ च,
मिथ्यादृष्टि च त्यक्तयं ।
असत्यं अनृतं न दृष्टन्ते,
अचेत दृष्टिं न दीयते ।

[सत्रह]

जो ज्ञानी-जन करते रहते,
ज्ञान-नीर से अवगाहन ।
परमब्रह्म उनका दर्पण-वत,
हो जाता निर्मल पावन ।
मिथ्यादर्शन को क्षय कर वे,
शुद्ध दृष्टि हो जाते हैं ।
असत, अचेतन, अनृतदृष्टि से,
फिर न दुःख वे पाते हैं ।

दृष्टं शुद्ध समयं च,
सम्यक्त्वं शुद्ध ध्रुवं ।
ज्ञानं मयं च संपूर्ण,
ममलदृष्टि सदा बुधैः ।

[अठारह]

ज्ञान-नीर के अवगाहन से,
असत् भाव मिट जाता है ।
परम शुद्ध सम्यक्त्व मात्र ही,
फिर हिय में दिख पाता है ।
शुद्ध बुद्ध ही दिखते हैं फिर,
आंखों में प्रत्येक घड़ी ।
दिखता है बस यही ज्ञान की,
अन्तर में मच रही झड़ी ।

लोकमूढ़ं न दृष्टंते,
देव, पाखंड न दृष्टते ।
अनायतन मद अष्टं च,
शंकादि अष्ट न दृष्टते ।

[उन्नीस]

ज्ञान नीर से मिट जाता है,
तीन मूढ़ताओं का ताप ।
अष्ट मदों का मन-मन्दिर में,
फिर न शेष रहता सन्ताप ।
छह अनायतन डरते हैं फिर,
नहीं हृदय में आते हैं ।
अष्ट दोष भी तस्कर नाईं,
देख इसे छिप जाते हैं ।

दृष्टतं शुद्ध पदं साधं,
दर्शन मल विमुक्तयं।
ज्ञानं मयं शुद्ध सम्यक्त्वं,
पंडितो दृष्टि सदा बुधं।

[बीस]

सप्त तत्व का जो निदान है,
अगम, अगोचर, मनभावन।
उसी 'ओम्' से मंडित दिखता,
बुधजन को चेतन पावन।
आतम-देश में जहां कहीं भी,
जाते उसके मन-लोचन।
उन्हें, वहीं दिखता है निर्मल,
सम्यग्दर्शन दुख-मोचन।

वेद्का अग्रस्थिरश्चैव,
वेदतं निरग्रंथं ध्रुवं।
त्रैलोक्यं समयं शुद्धं,
वेद वेदंति पंडितः।

[इक्कीस]

जो पंडित कहलाता है या
होता जो वेदान्त प्रवीण।
अग्र ज्ञान को कर उसमें वह,
सतत रहा करता तल्लीन।
तीन लोक का ज्ञायक है जो,
ग्रन्थहीन, ध्रुव, अविनाशी।
उसी आतम का अनुभव करता,
नितप्रति ज्ञान-नगर-वासी।

उच्चारण ऊर्ध शुद्धं च,
शुद्ध तत्वं च भावना ।
पंडितो पूज आराध्यं,
जिन समयं च पूजतं ।

[बाईस]

ऊर्ध्व-प्रणायक प्रणव मंत्र का,
करना मुख से उच्चारण ।
अपने विमल हृदय-मन्दिर में,
करना शुद्ध भाव धारण ।
यही एक पंडित-पूजा है,
पूज्यनीय, शिव, सुखदाई ।
शुद्ध आत्मा का पूजन ही,
है जिन पूजन हे भाई ।

पूजतं च जिनं उक्तं,
पंडितो पूजतो सदा ।
पूजतं शुद्ध सार्धं च,
मुक्ति गमनं च कारणं ।

[तेईस]

आत्मद्रव्य की पूजा करता,
बन जो जिन-वच-अनुगामी ।
वही एक जग में करता है,
पंडितपूजा शिवगामी ।
शुद्ध आत्मा ही भव-जल से,
तरने का बस ! है साधन ।
मुक्ति चाहते हो यदि तुम तो,
करो इसी का आराधन ।

अदेवं अज्ञान मूढं च,
अगुरुं अपूज्य पूजनं।
मिथ्यात्वं सकलजानंते,
पूजा संसार भाजनं।

[चौबीस]

'देव' किन्तु देवत्वहीन जो
वे 'अदेव' कहलाते हैं।
वही 'अगुरु' जड़ जो गुरु बनकर,
झूठा जाल बिछाते हैं।
ऐसे इन 'अदेव' 'अगुरों' की,
पूजा है मिथ्यात्व महान।
जो इनकी पूजा करते वे,
भव भव में फिरते अज्ञान।

तेनाह पूज शुद्धं च,
शुद्ध तत्व प्रकाशकं ।
पंडितो बंदना पूजा,
मुक्तिगमनं न संशयः ।

[पच्चीस]

सप्त तत्व के पुंजों का नित,
करता है जो प्रतिपादन ।
वही ब्रह्म है पूज्य, विज्ञगण !
करो उसी का आराधन ।
अगुरु, अदेवादिक की पूजा,
आ[illegible] है ।
आत्म-अर्चना, आत्म-वंदना,
मुक्ति-नगर पहुँचाती है ।

प्रति इन्द्र प्रति पूर्णस्य,
शुद्धात्मा शुद्ध भावना।
शुद्धार्थं शुद्ध समयं च,
प्रति इन्द्रं शुद्ध दृष्टितं।

[छब्बीस]

इन्द्र कौन? निज चेतन ही तो,
सत्य इन्द्र भव्यो स्वयमेव।
वही एक है शुद्ध भावना,
वही परम देवों का देव।
वही ब्रह्म, शुचि शुद्ध अर्थ है,
वही समय निर्मल, पावन।
उसी शुद्ध चिद्रूप देव का,
करो चिंतवन मनभावन।

दाताऽरु दान शुद्धं च,
पूजा आचरण संयुतं ।
शुद्धसम्यक्त्वहृदयं यस्य,
स्थिरं शुद्ध भावना ।

[सत्ताईस]

जिस जन के हृदयस्थल में है,
सम्यग्दर्शन रत्न महान ।
अपने ही में आप लीन जो,
जिसे न सपने में पर ध्यान ।
आत्म द्रव्य का पूजन करता,
कर जो नव आदर सत्कार ।
परमब्रह्म को वही ज्ञान का,
देता महा दान दातार ।

शुद्ध दृष्टी च दृष्टंते,
साधं ज्ञानमयं ध्रुवं।
शुद्धतत्वं च आराध्यं,
वंदना पूजा विधीयते।

[अष्टादश]

चिदानंद के ज्ञान-गुणों के,
अनुभव में होना तल्लीन।
यही एक वन्दन है सच्चा,
नहीं वन्दना और प्रवीण।
शुद्ध आतम का निर्मल मन से,
करना सच्चा आराधन।
यही एक बस पूजा सच्ची,
यही सत्य बस अभिवादन।

संघस्य चत्रु संघस्य,
भावना शुद्धात्मनां।
समयसारस्य शुद्धस्य,
जिनोक्तं साधं ध्रुवं।

[उनतीस]

मुनी, आर्यिका श्रावक-दम्पति,
भी क्यों करें इतर चर्चा ?
निजानन्द-रत होकर वे भी,
करें आत्म की ही अर्चा।
शुद्ध आतमा ही बस जग में,
सारभूत है हे भाई !
जिन प्रभु कहते, आत्मध्यान ही,
एक मात्र है सुखदाई।

सार्धं च सप्ततत्त्वानं,
द्रव्यकाया पदार्थकं ।
चेतनाशुद्ध ध्रुवं निश्चय,
उक्तं च केवलं जिनं ।

[तीस]

सप्त तत्त्व को देखो चाहे,
छह द्रव्यों का छानो कुंज ।
नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय का,
चाहे सतत बिखेरो पुंज ।
इन सब में पर जीव-तत्त्व ही,
सार पाओगे विज्ञानी ।
आत्मतत्त्व ही सारभूत है,
कहती यह ही जिनवाणी ।

मिथ्या तिक्त अविर्यं च,
कुज्ञान त्रति विक्तयं।
शुद्ध भाव शुद्ध समर्यं च,
सार्धं भव्य लोकयः।

[इकतीस]

दर्शन मोह तीन हैं भव्यो,
छोड़ो उनसे अपना नेह।
कुमति कुश्रुत, कुअवधि, कुज्ञानों,
से भी हीन करो हिय–गेह।
निर्मल भावोंसे तुम निशिदिन,
धरो आत्म का निश्चल ध्यान।
आतम-ध्यान ही भव-सागर के,
तरने को है पोत महान।

एतत् सम्यक्त्वपूज्यस्य,
पूजा पूज्य समाचरेत् ।
मुक्तिश्रियं पथं शुद्धं,
व्यवहारनिश्चयशाश्वतं ।

[बत्तीस]

निर्मल कर मन, वचन काय को,
तीर्थ-स्वरूपिणि वैतरणी ।
करो आतम की पूजा विज्ञो,
यही एक भव-जल-तरणी ।
शुद्ध आतमा का पूजन ही,
पूजनीय है सुखदाई ।
युगल नयों से सिद्ध यही है,
यही एक शिव-पथ भाई !

द्वितीय धारा
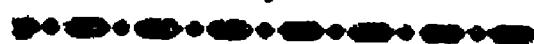
माला-रोहण

"श्रेणिक सुनो वास्तविक गूढ़ यह है,
जो पूर्णतम हैं सम्यक्त्व धारी।
केवल वही पुण्यशाली सुजन ही,
नृप! धर सके मालिका यह सुखारी।
जो इन्द्र, धरणेन्द्र, गंधर्व, यक्षादि,
नाना तरह के तुमने बताये।
वे स्वप्न में भी कभी भूल राजन्,
यह दिव्य माला नहीं देख पाये।"

माला रोहण

ॐकार वेदंति शुद्धात्म तत्वं,
प्रणमामि नित्यं तत्वार्थ सार्धं।
ज्ञानं मयं सम्यक्दर्शनोत्थं,
सम्यक्त्वचरणं चैतन्यरूपं।

[एक]

ओङ्कार रूपी वेदान्त ही है,
रे तत्व निर्मल शुद्धात्मा का।
ओङ्कार रत्नत्रय की मंजूषा,
ओङ्कार ही द्वार परमात्मा का।
ओङ्कार ही सार तत्वार्थ का है,
ओङ्कार चैतन्य प्रतिमाभिराम।
ओङ्कार में विश्व, ओङ्कार जगमें,
ओङ्कार को नित्य मेरा प्रणाम।

नमामि भक्त्या श्रीवीरनाथं,
नं तं चतुष्टं तं व्यक्त रूवं।
मालागुणं बोच्छं तत्वप्रबोधं,
नमाम्यहं केवलि नंत सिद्धं।

[दो]

जोऽनंत चतुष्टय के निकेतन,
जिनके न ढिग अष्ट कर्मारि बसते।
ऐसे जिनेश्वर श्री वीर प्रभु को,
मेरा युगल पाणि से हो नमस्ते।
मैं केवली, सिद्ध, परमेष्ठियों को,
भी भक्ति से आज मस्तक नवाता।
जो सप्त तत्वों की है प्रकाशक,
उस मालिका के गुण आज गाता।

कायाप्रमाणं त्वं ब्रह्मरूपं,
निरंजनं चेतनलक्षणत्वं ।
भावे अनेत्वं जे ज्ञानरूपं,
ते शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व वीर्यं ।

[तीन]

इस ब्रह्मरूपी निज आत्मा का,
काया बराबर स्वच्छंद तन है ।
मल से विनिर्मुक्त, है यह घनानंद,
चैतन्य-संयुक्त तारनतरन है ।
जो इस निरंजन शुद्धात्मा के,
शंकादि तजकर बनते पुजारी ।
वे ही सफल हैं, निज आत्मबल में,
वे ही सुजन हैं सम्यक्त्वधारी ।

संसार दुक्खं जे नर विरक्तं,
ते समय शुद्धं जिन उक्त दृष्टं।
मिथ्यात्व मद मोह रागादि खंडं
ते शुद्ध दृष्टी तत्वार्थ सार्धं।

[चार]

श्री जैन वाणी में मुख कमल से,
कहते गिरा सिद्ध परमात्मा हैं।
संसार दुःखों से जो परे हैं,
भव्यो वही जीव शुद्धात्मा हैं।
मिथ्यात्व, मद, मोह रागादिकों-से,
जिनने किये हैं रिपु नाश भारी।
वे ही सुजन हैं तत्वार्थ ज्ञाता,
वे ही पुरुष हैं सम्यक्त्वधारी।

शल्यं त्रियं चित्त निरोध नेत्वं,
जिन उक्त वाणी हृदि चेतनेत्वं।
मिथ्याति देवं गुरु धर्मदूरं,
शुद्धं स्वरूपं तत्त्वार्थ सार्धं।

[पांच]

श्री वीर प्रभु के अमृत-वचन का,
जिनके हृदय में जलता दिया है।
मिथ्यादि त्रय शल्य का रोग जिनने,
सम्यक्त्व-उपचार से क्षय किया है।
मिथ्यात्व-मय देव, गुरु धर्म से जो,
रहते सदा हैं परे आत्म-ध्यानी।
वे ही पुरुष हैं शुद्धात्म-प्रतिमूर्ति,
सम्यक्त्व धारी, तत्त्वार्थ-ज्ञानी।

जे मुक्ति सुक्खं नर कोपि साधं,
सम्यक्त्व शुद्धं ते नर धरेत्वं ।
रागादयो पुन्य पापाय दूरं,
ममात्मा स्वभावं ध्रुव शुद्ध दृष्टं ।

[५८]

मैं सिद्ध हूं, मुक्तिरमणी बिहारी,
है मोक्ष मेरी यही चारु काया ।
मद मोह मल पुण्य रागादिकों की,
पड़ती न मुझ पर कभी भूल छाया ।
सम्यक्त्व से पूर्ण जिनके हृदय हैं,
जो चाहते मोक्ष किस रोज पावें ।
वे स्वावलम्बी इसी भांति अपने,
हृदयस्थ परमात्मा को रिझावें ।

श्री केवलंज्ञान विलोकतत्वं,
शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्म तत्वं।
सम्यक्त्व ज्ञानं चर नंत सौख्यं,
तत्वार्थ सार्धं त्वं दर्शनेत्वं।

[सात]

ज्ञानारसी में जिस तत्व का रे !
दिपता सतत है प्रतिबिम्ब प्यारा।
जिसके वदन से प्रतिपल बिखरता-
रहता प्रभा-पुंज शुचि,शुद्ध न्यारा।
सम्यक्त्व की पूर्ण प्रतिमूर्ति है जो,
है जो अनूपम आनन्द-राशी।
तत्त्वार्थ के सार उस आत्मा को,
देखो, विलोको, मोक्षाभिलाषी !

सम्यक्त्व शुद्धं हृदयं समस्तं,
तस्य गुणमाला गुथतस्य वीर्यं।
देवाधिदेवं गुरु ग्रन्थ मुक्तं,
धर्मं अहिंसा क्षमा उत्तमर्घ्यं।

[आठ]

सम्यक्त्व की चारु चन्द्रावली से,
सबके हृदय-हार हैं जगमगाते।
पुण्यात्मा, वीरवर जीव ही पर,
उसके गुणों को कर व्यक्त पाते।
जिनराज ही देव हैं ज्ञानियों के,
गुरु ग्रन्थ-निर्मुक्त, कल्याणकारी।
है धर्म परमोच्च उत्तम अहिंसा,
जिसमें विहँसती क्षमा शक्तिधारी।

तत्वार्थ सार्धं त्वं दर्शनेत्वं,
मलं विमुक्तं सम्यक्त्व शुद्धं ।
ज्ञानं गुणं चरणस्य शुद्धस्य वीर्यं,
नमामि नित्यं शुद्धात्म तत्वं ।

[नौ]

तत्त्वार्थ के सार को तुम विलोको,
जो शुद्ध सम्यक्त्व का बन्धु ! प्याला ।
परिपूर्ण जो शुद्धतम ज्ञान से है,
जो है अतुल शक्ति चारित्र वाला ।
यह सार प्यारा शुद्धात्मा है,
चिर सुखसदन का अनुपम सु साधन ।
ऐसे अमोलक विज्ञानघन को,
मैं नित्य करता सहस्राभिवादन ।

जे सप्त तत्वं षट द्रव युक्तं,
पदार्थ काया गुण चेतनेत्वं।
विश्वं प्रकाशं तत्गान वेदं,
श्रुत देव देवं शुद्धात्म तत्वं।

[दश]

जो सप्त तत्वों को व्यक्त करता,
षट द्रव्य जिसको हस्तामलक हैं।
पंचास्तिकाया औ नौ पदारथ,
जिसमें निरन्तर देते झलक हैं।
चैतन्यता से है जो विभूषित,
त्रिभुवन-तली को जो जगमगाता।
श्रुत-ज्ञान रूपी उस आत्म में ही,
रत रह, करो आत्म-कल्याण भ्राता!

देवं गुरुं शास्त्र गुणान नेत्वं,
सिद्धं गुणं सोलाकारणेत्वं ।
धर्मं गुणं दर्शन ज्ञान चरणं,
मालाय गुथतं गुणसत्स्वरूपं ।

[ग्यारह]

सत् देव सत् शास्त्र सत् साधुजन में,
श्रद्धा करो नित्य सम्यक्त्वधारी ।
मुक्तिस्थ सिद्धों का नित मनन कर,
ध्याओ परम भावनायें सुखारी ।
शुचि, शुद्ध रत्नत्रय-मालिका से,
अपने अमोलक हृदय को सजाओ,
शिव पंथ जिन धर्म को ही समझकर,
इसके निरन्तर, सतत गीत गाओ ।

षड्भाय ग्यारा तत्वान पेषं,
व्रत्तानि शीलं तप दान चित्तं।
सम्यक्त्व शुद्धं ज्ञानं चरित्रं,
सुदर्शनं शुद्ध मलं विमुक्तं।

[बारह]

एकादश स्थान में आचरण कर,
कर्मारि पर जय करो प्राप्त भारी।
पंचाणुव्रत पाल भव भव सुधारो,
एकाग्र हो तप तपो तापहारी।
दो दान सत्पात्र-दल को चतुर्भांति,
निज आतम की ज्योति को जगमगाओ।
पावन करो शील-सुर-वारि से गेह,
सम्यक्त्व-निधि प्राप्त कर मोक्ष पाओ।

मूलं गुणं पालंत जीव शुद्धं,
शुद्धं मयं निर्मल धारयेत्वं ।
ज्ञानं मयं शुद्ध धरंत चित्तं,
ते शुद्ध दृष्टी शुद्धात्मतत्वं ।

[तेरह]

वसु मूलगुण को पालन किये से,
रे ! जीव होता है शुद्ध, सुन्दर ।
पुण्यार्थियों को इससे उचित है,
धारण करें वे यह व्रत-पुरन्दर ।
जो ज्ञानसागर इस आचरण से,
यह देव-दुर्लभ जीवन सजाते ।
वे वीर नर ही हैं शुद्ध दृष्टी,
शुद्धात्म के तत्व वे ही कहाते ।

शंकाद्य दोषं मद मान मुक्तं,
मूढं त्रियं मिथ्या माया न दृष्टं ।
अनाय षट्कर्म मल पंचवीसं,
त्यक्तस्य ज्ञानी मल कर्ममुक्तं ।

[चौदह]

शंकादि वसु दोष, मानादि मद को,
जिसके हृदय में कुछ थल नहीं है ।
त्रय मूढ़ता, षट आनायतन की,
जिस पर न पड़ती छाया कहीं है ।
उपरोक्त पच्चीस मल-वैरियों पर,
जिसने विजय प्राप्त की भव्य भारी ।
वह कर्म के पाश से छूटता है,
बनता वही मुक्ति-रमणी-विहारी ।

शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्मतत्त्वं,
समस्त संकल्प विकल्प मुक्तं।
रत्नत्रयालंकृत सत्स्वरूपं,
तत्वार्थसाधं बहुभक्तियुक्तं।

[पंद्रह]

शुद्धात्मा-तत्व का भव्य जीवो,
है शुद्ध, सित, सौम्य, निर्मल प्रकाश
संकल्प आदिक का क्षोभ उसमें,
करता नहीं रंच भी है निवास।
शुद्धात्मा का शुद्ध स्वरूप,
है रत्नत्रय से सज्जित सुखारी।
तत्वार्थ का सार भी बस यही है,
भव्यो बनो आत्म के तुम पुजारी।

जे धर्म लीना गुण चेतनेत्वं,
ते दुःख हीना जिनशुद्धदृष्टी।
संप्रोय तत्वं सोई ज्ञान रूपं,
व्रजंति मोर्ष क्षणमेक एत्वं।

[सोलह]

शुद्धात्मा के चैतन्य गुण में,
जो नर निरन्तर लवलीन रहते।
वे विज्ञ ही हैं, जिन शुद्ध दृष्टी,
संसार दुख-धार में वे न बहते।
जीवादि तत्वों का ज्ञान करके,
होते स्वरूपस्थ वे आत्म-ध्यानी।
कर्मारि-दल का विध्वंस करके,
वरते वही वे शिवा-सी भवानी।

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व शुद्धं,
माला गुणं कंठ हृदय अरुलितं ।
तत्वार्थ सार्धं च करोति नेत्वं,
संसार मुक्तं शिव सौख्य वीर्यं ।

[सत्रह]

जो शुद्ध दृष्टी शुद्धात्म-प्रेमी,
नित पालते हैं सम्यक्त्व पावन ।
अपने हृदयस्थल पर धारते हैं,
जो यह गुणों की माला सुहावन ।
वे भव्य जन ही पाते निरन्तर,
तत्वार्थ के सार का चारु प्याला ।
संसार-सागर से पार होकर,
पाते वही जीव चिर सौख्य-शाला ।

ज्ञानं गुणं माल सुनिर्मलेत्वं,
संक्षेप गुथितं तुव गुण अनन्तं ।
रत्नत्रियालंकृत सस्स्वरूपं,
तत्वार्थ सार्धं कथितं जिनेन्द्रैः ।

[अठारह]

शुद्धात्मा की गुणमालिका में,
वाणी अगोचर है पुष्प भाई ।
संक्षेप में ही, पर पुष्प चुन चुन,
यह दिव्य माला मैंने बनाई ।
आगम, पुराणों से तुम सुनोगे,
बस एक ही वाक्य परमात्मा का ।
रत्नत्रयाच्छन्न है भव्य जीवों,
शशि सा सुलक्षण शुद्धात्मा का ।

श्रेनीय पृच्छंति श्री वीरनाथं,
मालाश्रियं भागंत नेहचक्रं ।
धरणेन्द्र इन्द्र गन्धर्व जक्षं,
नरनाह चक्रं विद्या धरेत्वं ।

[उन्नीस]

श्री वीर प्रभु से श्रेणिक नृपति ने,
पूछा सभा में मस्तक नवाकर ।
इस मालिका को त्रिभुवन तलीपर,
किसने विलोका कहो तो गुणागर ?
क्या इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व ने भी,
देखी कभी नाथ यह दिव्यमाला ?
या यक्ष, चक्रेश, विद्याधरों ने,
पाया कभी नाथ यह मुक्ति-प्याला ?

किं दिप्त रतनं बहुवे अनन्तं,
किं धन अनंतं बहुमेय युक्तं।
किं त्यक्त राज्यं बनवासलेत्वं,
किं तत्व वेत्वं बहुवे अनंतं।

[बीस]

जिसके भवन में हीरे जवाहिर,
या द्रव्य की लग रहीं राशि भारी।
ऐसे कुबेरों ने भी प्रभो क्या,
देखी कभी माल यह सौख्यकारी।
या राज्य को त्याग जोगी बने जो,
उनने विलोकी यह माल स्वामी;
या सप्त तत्वों के पंडितों ने,
देखी गुणावलि यह मोक्षगामी ?

श्री वीरनाथं उक्तं च शुद्धं,
श्रुणु श्रेण राजा माला गुणार्थं ।
किं रत्न किं अर्थ किं राजनाथं,
किं तत्व वेत्वं नचि माल दृष्टं ।

[इक्कीस]

बोले जिनेश्वर श्री मुख-कमल से,
'श्रेणिक सुनो मालिका की कहानी ।
इस आत्म-गुण की सुमनावली के,
दर्शन सहज में न हों प्राप्त ज्ञानी ।
ना तो कभी रत्नधन-धारियों ने,
श्रेणिक सुनो मालिका यह निहारी ।
ना मालिका को उनने विलोका,
जो मात्र थे तत्व के ज्ञानधारी ।"

किं रत्न कार्यं बहुविहि अनंतं,
किं अर्थ अर्थं नहि कोपि कार्यं ।
किं राज चक्रं किं काम रूपं,
किं तत्व वेत्वं विन शुद्ध दृष्टि ।

[बाईस]

"इस माल के दर्शनों में न तो भूप,
रत्नादि पत्थर ही काम आवें ।
ना सार्वभौमों के राज्य या धन,
ही इस गुणावलि को देख पावें ।
ना तो इसे देख तत्वज्ञ पाये,
ना कामदेवों से दृग-सुखारी !
दर्शन वही कर सके मालिका का,
थे जो सुनो शुद्धतम दृष्टि धारी ।"

जे इन्द्र धरणेन्द्र गंधर्व यक्षं,
नाना प्रकारं बहुविह अनंतं।
तेऽनंत प्रकारं बहु भेय कृत्वं,
माला न दृष्टं कथितं जिनेन्द्रैः।

[तेईस]

"श्रेणिक! सुनो वास्तविक गूढ़ यह है,
जो पूर्णतम है सम्यक्त्व धारी।
केवल वही पुण्यशाली सुजन ही,
नृप! धर सके मालिका यह सुखारी।
जो इंद्र, धरणेन्द्र, गंधर्व, यक्षादि,
नाना तरह के तुमने बताये।
वे स्वप्न में भी कभी भूल राजन्!
यह दिव्य माला नहीं देख पाये।"

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व युक्तं,
जिन उक्त सत्यं सु तत्वार्थ मार्धं ।
आशा भय लोभ स्नेह त्यक्तं,
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं ।

[चौबीस]

जो स्याद्वादज्ञ, सम्यत्व-सम्पन्न,
शुचि, शुद्धदृष्टी, निज आत्मध्यानी।
तत्वार्थ के सार को जानते नित्य,
ध्याते पतित-पावनी जैन वाणी ।
आशा, भय, स्नेह औ लोभ से जो,
बिलकुल अछूते हैं स्वात्मचारी ।
वे ही हृदय कंठ में नित पहिनते,
है आत्म-गुणमाल यह सौख्यकारी।

जिनस्य उक्तं जे शुद्ध दृष्टी,
सम्यक्त्वधारीबहुगुण समृद्धिम् ।
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं,
मुक्ती प्रवेशं कथितं जिनेन्द्रैः ।

[पच्चीस]

"जिन-उक्त-तत्वों को जानते हैं,
जो पूर्ण विधि से सम्यक्त्व धारी ।
आत्म-समाधि-सा मिल चुका है,
जिनको समुज्ज्वल-तम रत्न भारी ।
उनके हृदय-कंठ पर हो निरन्तर,
किल्लोल करतीं ये माल ज्ञानी !
वे ही पुरुष मुक्ति में राज्य करते,
कहती जगतपूज्य जिनराज-ज्ञानी ।"

सम्यक्त्व शुद्धं मिथ्या विरक्तं,
लाजं भयं गारव जेवि त्यक्तं ।
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं,
मुक्तस्य गामी जिनदेव कथितं ।

[छब्बीस]

"मिथ्यात्व को सर्वथा त्याग कर जो,
नर हो चुके हैं सम्यक्त्व धारी ।
जिनके हृदय लाज, भय से रहित हैं,
जिनने किये नष्ट मद अष्ट भारी ।
उनकी हृदय-सेज ही भव्य जीवो !
इस मालिका की क्रीड़ास्थली है ।
जिनदेव कहते उनके रमण को,
ही बस खुली शिवनगर की गली है ।"

जे दर्शनं ज्ञान चारित्र शुद्धं,
मिथ्यात्व रागादि असत्य त्यक्तं।
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलितं,
सम्यक्त्व शुद्धं कर्म विमुक्तं।

[सत्ताईस]

शुचि, शुद्ध दर्शन, ज्ञानाचरण से,
जिनके हृदय में मची है दिवाली।
मिथ्यात्व, मद, झूठ, रागादि के हेतु,
जिनके न उर में कहीं ठौर खाली।
उनके हृदय कंठ पर ही निरंतर,
ये माल मनहर लटकती रही है।
वे ही सुजन हैं जिन शुद्ध दृष्टी,
रिपु-कर्म से मुक्ति पाते वही हैं।

पद्स्थ पिण्डस्थ रूपस्थ चित्तं,
रूपा अतीतं जे ध्यान युक्तं ।
आर्त रौद्रं मद मान त्यक्तं,
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं ।

[अट्ठाईस]

पादस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, निर्मूर्त,
इन ध्याल-कुंजों के जो विहारी ।
मद-मान-से शत्रुओं के गढ़ों पर,
जिनने विजय प्राप्त की भव्य भारी।
जिनके न तो रौद्र ही पास जाता,
जिनको न ध्यानार्त की गंध आती ।
ऐसे सुजन-पुंगवों के हृदय ही,
यह आत्मगुण-मालिका है सजाती ।

आज्ञा सुवेदं उपशम धरेत्वं,
क्षायिकं शुद्धं जिन उक्त सार्धं।
मिथ्या त्रिभेदं मल राग खंडं,
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं।

[उनतीस]

जो श्रेष्ठतम नर वेदक व उपशम,
सम्यक्त्व के हैं शुचि शुद्ध धारी।
मिथ्यात्व से हीन, है प्राप्त जिनको,
सम्यक्त्व क्षायिक-सा रत्न भारी।
मद-राग से जो रहित सर्वथा हैं,
जो जानते, जिन-कथित तत्त्व पावन।
वे ही हृदस्थल पर देखते हैं,
नित राजती, मालिका यह सुहावन।

जे चेतना लक्षणो चेतनेत्वं,
अचेतं विनासी असत्यं च त्यक्तं।
जिन उक्त सत्यं सु तत्वं प्रकाशं,
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं।

(तीस)

चैतन्य—लक्षण—मय आत्मा के,
हैं जो निराकुल, निश्चल पुजारी।
अनृत, अचेतन, विनाशीक, पर में,
जिनको नहीं रंच ममता दुखारी।
जिनके हृदय में जिन उक्त तत्वों,
की नित्य जलती संतप्त ज्वाला।
उनके हृदय-कंठ को ही जगाती,
श्रेणिक सुनो! यह अध्यात्म-माला।

जे शुद्ध बुद्धस्य गुण सत्य रूपं,
रागादि दोषं मल पुंज त्यक्तं।
धर्मं प्रकाशं मुक्ति प्रवेशं,
ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं।

[इकतीस]

जिन शुद्ध जीवों को दिख चुकी है,
निज आत्मकी माधुरी मूर्ति बांकी।
जिनके दृगों के निकट झूलती है,
प्रतिपल सुमुखिमुक्ति की दिव्य झाँकी
जो रागद्वेषादि मल से परे हैं,
जो धर्म की कान्ति को जगमगाते।
इस मालिका को वही शुद्ध दृष्टी,
अपने हृदय पर फबी देख पाते।

जे सिद्ध नं तं मुक्ति प्रवेशं,
शुद्धं स्वरूपं गुण माल ग्रहितं ।
जे केवि भव्यात्म सम्यक्त्व शुद्धं,
ते जात मोक्षं कथितं जिनेन्द्रैः ।

[बत्तीस]

अब तक गये विश्व से जीव जितने,
चोला पहिन मुक्ति का सिद्ध शाला ।
अपने हृदय पर सजा ले गये हैं,
वे सब यही आत्म-गुण-पुष्पमाला ।
इस ही तरह शुद्ध सम्यक्त्व धरकर,
जो माल धरते यह सौख्यकारी ।
कहते जिनेश्वर वे मुक्त होकर,
बनते परमब्रह्म आनन्दधारी ।

तृतीय धारा

कमल-बत्तीसी

आत्म तत्व ही इस त्रिभुवन में,

सच्चा रत्नत्रय है ।

सब देवों का देव वही,

परमेश्वर एक अजय है ।

आत्म तत्व ही सब गुरुओं का,

श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी ।

सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बस,

आत्म तत्व सुखदानी ।

तत्वं च परम तत्वं परमप्पा,
परम भाव दरसीए ।
परम जिनं परमिस्टी,
नमामिहं परम देवदेवस्य ।

[एक]

तत्वों में जो तत्व परम हैं,
भाव परम दरशाते ।
परम जितेन्द्रिय परमेष्ठी जो,
परमेश्वर कहलाते ।
सब देवों में देव परम जो,
वीतराग, सुख-साधन ।
ऐसे श्री अरहन्त प्रभू को,
करता मैं अभिवादन ।

जिव वयनं सद्दहनं,
कमलसिरि कमल भाव उववन्नं ।
आर्जव भाव संजुत्तं,
ईर्ज स्वभाव मुक्ति गमनं च ।

[दो]

पतितोद्धारक जिनवाणी के,
होते जो श्रद्धानी ।
आत्म-कमल से प्रगटें, उनके,
ही भव—भाव—भवानी ।
आत्म बोध का होजाना ही,
आकुलता जाना है ।
आकुलता का जाना ही बस,
शिव सुख को पाना है ।

अन्मोयं न्यान सहावं,

रयनं रयन स्वरूपममल न्यानस्य।

ममलं ममल सहावं,

न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्ति ।

[तीन]

ज्ञान-स्वभाव है, स्वत्व सनातन,

आतम तत्व का प्यारा ।

रत्नत्रय से है प्रदीप्त वह,

रत्न प्रखरतम न्यारा ।

कर्मों से निर्मुक्त, सदा वह,

शुचि स्वभाव का धारी ।

जो उसमें नित रत रहते वे,

पाते शिव सुखकारी ।

जि न य ति मिथ्या भावं,
अनृत असत्य पर्जाव गलियं च।
गलियं कुन्यान सुभावं,
विलयं कम्मान तिविह जोएन।

[चार]

आत्म-मनन से मिथ्यादर्शन,
ईंधन-सा जल जाता।
अनृत, अचेतन, असत् पदों में,
मोह न फिर रह पाता।
'सोऽहं' की ध्वनि क्षय कर देती
कुज्ञानों की टोली।
आत्म चिन्तवन रचदेता है,
अष्ट मलों की होली।

नन्द आनन्दं रूवं,
चे रन आनन्द पर्जाव गलियं च ।
न्यानेन न्यान अन्मोयं,
अन्मोयं न्यान कम्म षिपनं च ।

[पांच]

परम ब्रह्म में जब रत होता,
मन—मधुकर—मतवाला ।
सत् चित्, आनंद से भर उठता,
तब अंतर का प्याला ।
ज्ञानी चेतन, ज्ञान-कुण्ड में,
खाता फिर फिर गोते ।
मलिन भाव और सबल कर्म तब
पल पल में क्षय होवे ।

कम्म सहावं षिपनं,
उत्पन्नं षिपिय दिष्टि सद्भावं।
चेयन रूव संजुत्तं,
गलियं विलयंति कम्म बंधानं।

[छह]

कर्मों का नश्वर स्वभाव है,
जब वे खिर जाते हैं।
क्षायिक-सम्यग्दर्शन-सा तब,
रत्न मनुज पाते हैं।
क्षायिक सम्यग्दृष्टी नित प्रति,
आत्म—ध्यान धरता है।
जन्म जन्म के कर्मों को वह,
क्षण में क्षय करता है।

मन सुभाव संषिपनं,
संसारे सरनि भाव षिपनं च ।
न्यान बलेन विसुद्धं,
अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च ।

[सात]

इस चंचल मन का स्वभाव है,
नाशवान प्रिय भाई ।
नश्वर है मिथ्यादर्शन की,
भी प्रकृति दुखदाई ।
आत्म ज्ञान ही सरल शुद्ध,
भावों को उपजाता है ।
सरल शुद्ध भावों के बल से,
हो नर शिव पाता है ।

वैरागं तिविहि उवनं,
जनरंजन रागभाव गलियं च।
कलरंजन दोष विमुक्कं,
मनरंजन गारवेन तिक्कं च।

[आठ]

भव, तन, भोगों से निस्पृह बन
जाता आत्म—पुजारी।
जन-रंजन गारव न उसे
रह, देता, दुख दुखकारी।
तन—रंजन के भय से वह,
छुटकारा पा जाता है।
मन—रंजन गारव भी उसके,
पास न फिर आता है।

दर्सन मोहंध विमुक्कं,
रागं दोषं च विषय गलियं च ।
ममल सुभाउ उवन्नं,
नन्त चतुस्टये दिस्टि संदर्स ।

[नौ]

दर्शन-मोह से हो जाता है,
मुक्त आत्म का ध्यानी ।
रागद्वेष से उसकी ममता,
हट जाती दुखदानी ।
घट में उसके आत्म-भाव का,
हो जाता उजियाला ।
ऽनंत चतुष्टय की जिसमें नित,
जगती रहती ज्वाला ।

तिअर्थं सुद्ध दिष्टं,
पंचार्थं पंच न्यान परमेस्टी ।
पं चा चा र सु च र नं,
सम्मत्तं सुद्ध न्यान आचरनं ।

[दस]

सम्यग्दृष्टी नितप्रति निर्मल,
रत्नत्रय को ध्याता ।
पंच ज्ञान, पंचार्थ, पंच प्रभु,
का होता वह ज्ञाता ।
पंचाचारों का नितप्रति ही,
वह पालन करता है ।
सब मिथ्या व्यवहार त्याग वह,
आत्म-ध्यान धरता है ।

दर्सन न्यान सुचरनं,
देवं च परम देव सुद्धं च।
गुरुं च परम गुरुवं,
धर्मं च परम धर्म संभावं।

[ग्यारह]

आत्म तत्व ही इस त्रिभुवन में,
सच्चा रत्नत्रय है।
सब देवों का देव वही,
परमेश्वर एक अजय है।
आत्म तत्व ही सब गुरुओं में,
श्रेष्ठ परम गुरु ज्ञानी।
सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बस,
आत्म तत्व सुखदानी।

जिन पंच परम जिनयं,
न्यानं पंचामि अष्षरं जोयं ।
न्यानेन न्याय विधं,
ममल सुभावेन सिद्धि सम्पत्तं ।

[बारह]

आत्म तत्व ही सम्यक्त्वी का,
परमेष्ठी पद प्यारा ।
आत्म तत्व ही उसका केवल-
ज्ञान अलौकिक न्यारा ।
आत्म तत्व के अनुभव से ही,
आत्म ज्ञान बढ़ता है ।
आत्म ज्ञान के बल पर ही नर,
शिव पथ पर चढ़ता है ।

चिदानन्द चितवनं,
चेयन आनन्द महाव आनन्दं ।
कम्ममल पयडि खिपनं,
ममल सहावेन अन्मोय संजुत्तं ।

[तेरह]

सत् चित्-आनन्द चेतन में तुम,
रमण करो प्रिय भाई !
इससे तुमको होगा अनुभव,
एक अकथ सुखदाई ।
मुरझा जाती है पापों की,
आत्म मनन से माला ।
कर्म प्रकृतियों की हो जाती,
हिम-सी ठण्डी ज्वाला ।

अप्पा पर पिच्छंतो,
पर पजाव सल्य मुक्कं च।
न्याय सहावं सुद्धं,
सुद्धं चरनस्य अन्मोय संजुत्तं।

[चौदह]

'आत्म द्रव्य का पर स्वभाव है,
पर द्रव्यों का पर है।'
इस मन में बहता जब ऐसा,
ज्ञान-मयी निर्झर है।
पर परणतियें, शल्यें तब सब
सहसा ढह जातीं हैं।
निज स्वरूप की ही तब फिर फिर,
झांकी दिखलाती हैं।

अबम्भं न पवन्तं,
त्रिकहा त्रिनस्य त्रिषय मुक्कं च ।
न्यान सुहाव सु समयं,
समय सहकार ममल अन्मोय ।

[पंद्रह]

परमब्रह्म में जब चंचल मन,
निश्चल हो रम जाता ।
तब न वहां पर अन्य; किन्तु,
निज आतम स्वरूप दिखाता ।
चारों त्रिकथा व्यसन, विषय
उस क्षण छुप-से जाते हैं ।
परमब्रह्म में रत मन होता,
मल सब धुल जाते हैं ।

जिन वयनं च सहावं,
जिनय मिथ्यात कषाय कम्मानं।
अप्पा सुद्धप्पानं,
परमप्पा ममल दर्सए सुद्धं।

[सोलह]

जिन-मुख सरसीरुह की है यह,
ऐसी प्रिय जिनवाणी।
मल, मिथ्यात्व, कषायें सबको,
पल में हरती ज्ञानी!
आत्म तत्व ही शुद्ध तत्व है,
जिन प्रभु कहते भाई।
आत्म-मुकुर में ही बस तुमको,
देंगे प्रभु दिखलाई।

जिन दिष्टि इष्टि संसुद्धं,
इस्टं संजोय विगत अनिष्टं ।
इस्टं च इस्ट रूवं,
ममल सहावेन कम्म संषिपनं ।

[सत्रह]

जिनवाणी को श्रद्धा हिय में,
शुचि पावनता लाती ।
विरह अनिष्टों से, इष्टों से,
वह संयोग कराती ।
त्रिभुवन में सबसे मृदुतम बस,
आत्म-मनन की प्याली ।
आत्म-मनन से ही टूटेगी,
कर्म-कमठ की जाली ।

अन्यानं नहि- दिट्ठं,
न्यान सहावेन अन्मोय ममलंच ।
न्यानंतरं न दिट्ठं,
पर पजाव दिट्ठि अंतरं सहसा ।

[अठारह]

क्षायिक सम्यग्दृष्टी में अज्ञान,
नहीं रहता है ।
ज्ञान-तरंगों पर चढ़, नित वह,
शिव-सुख में बहता है ।
आत्म-ज्ञान में अंतर उसके,
नेक नहीं दिखलाता ।
भेद-भाव, पर परणतियों में,
पर सहसा आ जाता ।

अप्पा अप्प सहावं,

अप्प सुद्धप्प ममल परमप्पो ।

परम सरूवं रूवं,

रूवं विगतं च ममल न्यानं च ।

[उन्नीस]

आत्म द्रव्य ही है परमोत्तम,

शुद्ध स्वरूप हमारा ।

वह ही है शुद्धात्म यही है,

परमब्रह्म प्रभु प्यारा ।

त्रिभुवन में चेतन-सा उत्तम,

रूप न और कहीं है ।

है यह ज्ञानाकार, अन्यतम

इसका रूप नहीं है ।

ममलं ममल सरूवं,

न्यान विन्यान न्यान सहकारं ।

जिन उत्तं जिन वयनं,

जिन सहकारेन मुक्ति गमनं च ।

[बीस]

जिनके अमृत-वचन मोक्ष-से,

मृदु फल के दायक हैं ।

हस्तमलकवत् जो त्रिभुवन के,

घट घट के ज्ञायक हैं ।

ऐसे जिन प्रभु भी यह कहते,

चेतन अविकारी है ।

आत्म-ज्ञान ही पंच ज्ञान के,

पथ में सहकारी है ।

ष ट् का ई जी वा णां,
क्रिया सहकार ममल भावेन,
सत्तु जीव सभावं,
कृपा सह ममल कलिष्ट जीवानं।

[इक्कीस]

अनिल, अनल, जल, धरणि, वनस्पति,
औ त्रस तन में ज्ञानी !
पाये जाते हैं वसुधा पर,
सब संसारी प्राणी ।
इन जीवों पर दया भाव ही,
समता भाव कहाता ।
चेतन का यह चिर-स्वभाव, यह,
भाव — विशुद्ध बढ़ाता ।

एकांत विप्रिय न - दिट्ठं,
मध्यस्थं ममल सुद्ध सभावं ।
सुद्ध सहावं उत्तं,
ममल दिट्ठि च कम्म षिपनं च ।

[बाईस]

ज्ञानी जन एकान्त विपर्यय,
भाव न मन में लाते ।
स्याद्वाद-नय पर चढ़ कर वे,
मध्य — भाव अपनाते ।
भावों में शुचिता आना ही,
कर्मों का जाना है ।
कर्मों का जाना ही भाई !
शिव-पथ को पाना है ।

सत्वं किलिष्ट जीवा,
अन्मोय सहकार दुग्गए गमनं ।
जे विरोह सभावं,
संसारे सरनि दुषत्रीयम्मि ।

[तेईस]

जो नर संसारी जीवों को,
पीड़ा पहुँचाते हैं ।
या पर से दुख पहुँचा उनको,
जो अति सुख पाते हैं ।
ऐसे दुष्टों का होता बस,
नर्क-स्थल में डेरा ।
असम भाव जिसके, उसको बस,
मिलता नर्क बसेरा ।

न्यान सहाव सु समर्थ,
अन्मोयं ममल न्यान सहकारं ।
न्यानं न्यान सरूवं,
ममलं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं ।

[चौबीस]

आत्म-सरोवर में रमना ही
ज्ञान-स्वरूप है भाई !
आत्म ज्ञान ही से मिलता है
केवल ज्ञान सुहाई ।
आत्म ज्ञान ही से पाता नर,
पद अरहन्त सुखारी ।
आत्म ज्ञान के बल पर ही नर,
बनते शिव—अधिकारी ।

इट्ठं च परम इट्ठ,
इट्ठं अन्मोय विगत अनिट्ठं ।
पर पजांयं विलयं,
न्यान सहावेन कम्मजिनियं च ।

[पच्चीस]

त्रिभुवन में सर्वोत्कृष्ट बस,
इस चेतन का पद है ।
निज स्वरूप में रमना ही बस,
अहित-विगत सुख—प्रद है ।
आत्म मनन से कर्मों की सब,
बेड़ी कट जाती हैं ।
इसके सन्मुख पर पर्यायें,
पास नहीं आती हैं ।

जिन वयन सुद्ध सुद्धं,
अन्मोयं ममल सुद्ध सहकारं ।
ममलं ममल सरूवं,
जं रयनं रयन सरूव संमिलियं ।

[छब्बीस]

श्री जिनवाणी निश्चयनय का,
प्रिय सन्देश सुनाती ।
त्रिभुवनतल में उससी पावन,
वस्तु न और लखाती ।
ज्ञान-सिन्धु आतम का भव्यो !
रूप परम पावन है ।
आतम-मनन से ही मिलता बस,
रत्नत्रय-सा धन है ।

स्रेष्टं च गुन उववन्नं,
स्रेष्टं सहकार कम्म संपिपनं ।
स्रेष्टं च इष्ट कमलं,
कमलंसिरि कमल भाव उववन्नं ।

[सत्ताईस]

जगता है शुद्धोपयोग गुण,
आत्म – मनन से भाई ।
जिसके बल से गल जाते सब,
कर्म महा दुखदाई ।
कर्म काट, अरहन्त महापद,
आत्म—कमल पाता है ।
और यही निज-रूप रमण फिर,
शिवपुर दिखलाता है ।

जिन वयनं सहकारं,
मिथ्या कुन्यान सल्य तिक्तं च।
विगतं विषय कषायं,
न्यानं अन्मोय कम्म गलियं च।

[अट्ठाईस]

भव-सागर अति दुर्गम, दुस्तर,
थाह न इसकी प्राणी !
इसको तरने में समर्थ सब,
एक महा जिन—वाणी।
जिन—वाणी कुज्ञान, कषायें,
शल्य, विषय क्षय करती।
निश्चयनय का गीत सुना यह,
सब कर्मों को हरती।

कमलं कमल सहावं,
षट्कमलं तिअर्थ ममल आनन्दं ।
दर्सन न्यान सरूवं,
चरनं अन्मोय कम्म संपिरनं ।

[उनतीस]

आतम-कमल अरहन्त रूप में,
जिस क्षण मुसकाता है ।
उस क्षण ही, षट गुण त्रिरत्न-दल
उसको विकसाता है ।
दर्शन--ज्ञान--सरोवर में तव,
आतम, रमण करता है ।
और अघातिय कर्म नाश, वह
शिव में पग धरता है ।

संसार सरनि नहु दिट्ठं,
नहु दिट्ठं समल पर्जाय सभावं।
न्यानं कमल सहावं,
न्यान विन्यान ममल अन्मोयं।

[नीम]

सिद्ध न संसारी जीवों—से
भव भव गोते खावें।
अशुचि मलिन परिणतियें उनके,
पास न जाने पावें।
उनके उर में कमल-सदृश बस,
केवल — ज्ञान विहंसता।
शुद्ध ज्ञान, सत्, चित् सुख ही बस,
उनके हिय में बसता।

जिन उत्तं सद्दहनं,
अप्पा परमप्प सुद्ध ममलं च।
परमप्पा उवलद्धं,
धम्म सुभावेन कम्म विलयन्ती।

[इकतीस]

'विज्ञो ! अपना आत्म देव ही,
है जग का परमेश्वर।
बरसाते इस वाक्य-सुधा को,
तारण तरण जिनेश्वर।'
जो जन, जिन--वच पर श्रद्धा कर,
बनता आत्म—पुजारी।
कर्म काट, भवसागर तर वह,
बनता मोक्ष—बिहारी।

जिन दिष्ट उत्त सुद्धं,
जिनति कम्मान तिविह जोएन ।
न्यानं अन्मोय ममलं,
ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च ।

[बत्तीस]

जैसा जिन ने देखा, जैसा
वचन—अमिय बरसाया ।
वैसे ही शुद्धातम तत्व का,
मैंने रूप दिखाया ।
त्रिविधि योग से सतत करेंगे,
जो आतम—आराधन ।
कर्म जीत, वे ज्ञानानन्द हो,
पावेंगे शिव—पावन ।

प्रार्थना-'आतमराम'

आतमराम जय आतमराम, अजर अमर है आतमराम।
पतित पावन आतमराम ॥

बोलो बंधुओ बड़े प्रेम से, आतमराम जय आतमराम। टेक

है यह एक अनेकों नाम, मन मंदिर में है विश्राम।
सोऽहं शिवं ब्रह्म है नाम, इसको कहते प्रेमाभिराम ॥
नाम रूप का भेद भूल जा, सदा सर्वदा आतमराम।
निर्मल शुद्ध बुद्धि से देखो, पा जावोगे आतमराम ॥१॥
बोलो०

तीरथ मय है चारों धाम, इसमें गुंजित आठों याम।
ब्रह्म विष्णु है शंकर नाम, कोई कहता राधेश्याम ॥
जगती के तन तन में देखो, व्याप रहा है आतमराम।
पृथ्वी पानी पवन अग्नि में, झलक रहा है आतमराम ॥२॥
बोलो०

पानी में नहिं गलता राम, नहीं आग में जलता राम ।
नहीं वायु में उड़ता राम, नहीं भूख से मरता राम ॥
ध्रुव है नित्य अटल दुनियां में, शाश्वत रहता आतमराम ।
जय २ निर्गुण जय गुणसागर, अनथ अनामय आतमराम।
बोलो० ॥३॥

इसमें सच्चा है आराम, खरच नहीं होता है दाम ।
भज लो इसको प्रात: शाम, जिससे हो जाये कल्याण ॥
अपने ही में ढूंढ़ निकालो, कर्म करो नितप्रति निष्काम ।
ध्यान लगाकर अनुभव करलो, पा जावोगे आतमराम ॥४॥
बोलो०

महावीर की यह जिनवाणी, वेद बुद्ध ने इसे वखानी ।
सब धर्मों ने निश्चय जानी, संतों ने इसको पहिचानी ॥
अपने पर का भेद भूल जा, मिल जावेंगे आतमराम ।
आशा भय स्नेह छोड़ दे, झलक उठेंगे आतमराम ॥५॥
बोलो०

मीरा की वह श्याम लगन में, द्रोपदि की यह चीर हरन में ।
सीता की वह अग्नि तपन में, राजुल ने पाया गिरिवन में ॥
मैनासुन्दुरि ने पति सेवा में ही, पाया अपना आतमराम ।
सेवा के पथ पर आ जाओ, बोल उठेंगे आतमराम ॥६॥
बोलो०

कुंदकुंद ने आत्ममगन में, योगीन्दु देव की सत्य लगन में।
उमास्वामि की तत्व लगन में, तारण गुरु को श्रुतचिंतन में॥
स्याद्वाद की सत्य जगन में, जगधारा के उलट चलन में।
सत् श्रद्धाऽरु ज्ञान चरन में, पाया अपना आतमराम॥७॥
बोलो०

नदी बेतवा निर्जन वन में, बना हुआ है सुन्दर धाम।
संतों की यह तपोभूमि है, और निसई जी उसका नाम॥
तारण तरन गुरु ने जहां पर, अंत समय कीना विश्राम।
ऐसे आतमतत्त्व के ज्ञाता, गुरु को नित प्रति सदा प्रणाम॥
बोलो बंधुओ बड़े प्रेम से, आतमराम जय आतमराम॥८॥

卐

रचयिता:—

श्री बाबूलाल डेरिया

संपादक—तारण जैन पत्रिका

गुरु नाम 'संकीर्तन'

तारणम् ! तारणम् !! तारणम् !!!

जय तारणम् ।

वन्दे श्री गुरु तारणम् ॥१॥

तारणम् ! जय तारणम् !!

वन्दे श्री गुरु तारणम् ॥२॥

उपरोक्त-संकीर्तन अखंड रूप से अष्ट पहर सामूहिक
रूप से करने से अनेकानेक संकटों का
निवारक व शुभ मनोकामनाओं
की पूर्ति करने वाला
होगा।

卐

प्रस्तुतकर्ता:—

ब्रह्मचारी श्री गुलाबचन्द्र जी महाराज

— प्रातः कालीन —

* जिनवाणी-प्रार्थना *

जय करुणामय जिनवाणी ! जय जय माँ ! मंगलपाणी !!

स्याद्वाद नय के प्राङ्गण में
बहे तुम्हारी धारा,
परम अहिंसा मार्ग तुम्हारा
निर्मल, प्यारा, प्यारा !

माँ ! तुम इस युग की वाणी ! सब गुणखानी !!
जय... (Chorus)

अशरण शरणा, प्रणतपालिका
माता नाम तुम्हारा।
कोटि-कोटि पतितों के दल को
तुमने पार उतारा ॥

क्या ज्ञानी क्या अज्ञानी ? तिर्यग् प्राणी !!
जय... (Chorus)

मोह-मान-मिथ्यात्व मेरु को
तुमने भस्म बनाया।
जिसने तुम्हें नयन भर देखा,
जीवन का फल पाया ॥

तुम मुक्ति-नगर की रानी ! शिवा भवानी !!
जय... (Chorus)

कुन्द कुन्द, योगीन्दु देव से
तुमने सुत उपजाये।
तारणस्वामी, उमास्वामि से
तुमने सूर्य जगाये॥
माँ! कौन तुम्हारा शानी? तुम लाशानी!!
जय... (Chorus)

"यह भव-पारावार कठिन है
इसका दूर किनारा!
इसके तरने को समर्थ है,
आत्म-जहाज हमारा।"
यह माँ की सुन्दर वाणी! शिव सुख दानी!!
जय .. (Chorus)

माता! ये पद-पद्म तुम्हारे
हमसे कभी न छूटें।
छूटें ही तो तब, जब 'चंचल'
जन्म-मरण से छूटें!!
माँ! तुम चन्दन हम पानी! हृदय समानी!!
जय .. (Chorus) 'चंचल'

— संध्या कालीन —

* जिनवाणी-प्रार्थना *

आओ आरती उतारें श्री जिनवाणि की रे !
श्री जिनवाणि की रे - मुक्तिदानि की रे ! —आओ

स्याद्वाद नय प्रधान
दया धर्म जिसका प्राण
विश्व-प्रेम की निधान

झांकी हृदय में संवारें, भव-भवानि की रे ! —आओ

जन्म - मरण - सिन्धु-पोत
कुमति-तिमिर को रवि-जोति
अगम ज्ञान की जो स्रोत

अमृत-धार बहे जहां केवलज्ञानि की रे ! —आओ

कुन्दकुन्द से विद्वान्
तारण तरण से जल-यान्
हुए जिसके सुत महान्

आओ वंदना करें उसी गुणखानि की रे ! —आओ

जननि हम हैं निरवलम्ब
पतित पावनी तू अम्ब !
तार, मत लगा विलम्ब,

'चंचल' सुरत ना बिसार पतित प्राणि की रे ! —आओ

— 'चंचल'

— प्रात: कालीन —

* गुरु स्तुति *

[यह स्तुति प्रात:कालीन शास्त्र-प्रवचन होने के बाद सामूहिक रूप से बहुत ही शान्त तरीके से पढ़ी जाना चाहिए]

卐

गुरु तारण-स्वामी मेरे !

पतितोद्धारक, अधम उबारक,
करुणा-सिन्धु घनेरे !! गुरु···

महा मुनीश्वर, परम तपोधन,
गेह ज्ञान — गुण केरे,
सन्तों के कंचन-गृह पर जो,
बन, मणि कलश चढ़े रे। गुरु.

डूब रहे, मिथ्यात्व-सिन्धु में
थे, हम सांझ — सवेरे,
प्यारे गुरु ने ज्ञान-पोत से,
हमको पार करे रे ! गुरु...

जाति-पाँति का भेद न रखकर
सबको चित्त धरे रे,
मुक्ति-नगर में ले जाने को,
सब के बाहु गहे रे ! गुरु...

'सोऽहं' 'अहम्' और 'मम्'
ध्वनि से, त्रिभुवन चेत करे रे,
चौदह ग्रन्थ-रत्न दे हमको,
भव-भव ताप हरे रे! गुरु.
गुरु दयाल तेरे पद-पङ्कज,
मेरे हृदय गड़े रे,
तू चन्दा 'चंचल' चकोर हम,
तुम साहब हम चेरे! गुरु...

— 'चंचल'

— रात्रि कालीन —

* गुरु-प्रार्थना *

भज मन! तारण तरण दयाल!
जेहिं सुमरे भव-फन्द कटत हैं,
टूटें जग के जाल।
अगुरु, अदेवों के कर में फँस,
भूल न अपनी चाल॥